तिरुवल्लुवर तथा उनका अमर ग्रंथ तिरुक्कुरल

पं. महेन्द्रकुमार जैन, न्यायशास्त्री

वर्तमान काल में जिस प्रांत को हम तमिलनाडु के नाम से पुकारते हैं उसमें मुख्यतः कावेरी नदी के आसपास का प्रदेश सम्मिलित है। उसके एक ओर आन्ध्र, एक ओर कर्नाटक और उससे सटा हुआ मलाबार या केरल प्रांत है। इस प्रदेश की मूल संस्कृति द्रविड़ है। इसकी पुरातनता के संबंध में अनुमान लगाना कठिन है। यह आर्य लोगों के हिंदुस्तान में आने के बहुत पहले से प्रचलित थी।

द्रविड़ संस्कृति की तरह इस प्रदेश की मुख्य भाषा तमिल भी संस्कृत की तरह बहुत पुरानी है। सन् ईस्वी से बहुत पहले तमिल भाषा में अनेक ग्रंथों की रचना हो चुकी थी। फिर भी दण्डकारण्य के उस पार की मराठी, गुजराती, बंगाली और हिंदी आदि भाषाओं की तरह तमिल भाषा का संस्कृत के साथ कोई संबंध नहीं है। भारतवर्ष में संस्कृत से सर्वथा अलिप्त रहकर अपना स्वतंत्र रूप से विकास करनेवाली यदि कोई भाषा है तो वह है तमिल। तमिल के अतिरिक्त तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि भाषाओं में संस्कृत के ५० प्रतिशत शब्द हैं, परंतु तमिल भाषा में यह खिचड़ी नहीं होने पाई। आन्ध्र लोग अपने देश को आन्ध्र देश या आन्ध्र सीमा कहते हैं। 'सीमा,' 'देश' आदि शब्द संस्कृत के हैं, परंतु तमिलनाडु में प्रयुक्त 'नाडु' शब्द देश के अर्थ में प्रयुक्त है, जो कि आर्येतर भाषा का सूचक है। तमिल में संस्कृत के शब्द बहुत कम हैं। उसमें विविध अर्थों को प्रकट करनेवाले अपने स्वतंत्र शब्द हैं। दुष्ट राजा और अच्छा राजा आदि के लिए कोडुंगोल मन्नन अलग शेंगोल मन्नन जैसे अलग स्वतंत्र शब्द-कोश और स्वतंत्र वाक्य-विन्यास है। उसकी रचना तथा साज-सज्जा स्वावलंबन के आधार पर स्थित है जो संस्कृत जितनी ही पुरानी है।

प्राचीन तमिल वाङ्मय तीन भागों में विभाजित है। संगीत, नाट्य और साहित्य। साहित्य की तरह संगीत और नाट्यकला पर भी इस प्रांत में अनेक ग्रंथों की रचना हुई है। चिदंबरम् के नटराज के भव्य मंदिरवाले प्रांत में ऐसे ग्रंथों की रचना होना सहज था। नृत्यकला भी अपनी चरम सीमा पर पहुँची हुई थी। दूसरे प्रांतों में अप्राप्य यहाँ हजार हजार तारोंवाले तंतुवाद्य थे और उनसे सुमधुर संगीत की तरंगें तरंगित होती रहती थीं। इन तीन प्रकार के विभाजन के अतिरिक्त साहित्य में एक अन्य प्रकार का विभाग होता था—प्रेम वाङ्मय और प्रेमविहीन वाङ्मय। साहित्य के इन तीनों विभागों के उनके अनुकूल भिन्न भिन्न व्याकरण भी होते थे। तमिल का यह पुरातन वाङ्मय टीका या भाष्य के बिना समझ में नहीं आता। जिस प्रकार प्राचीन संस्कृत और प्राकृत के ग्रंथों पर टीका, भाष्य, चूर्णि, विवरण, टिप्पणी और समालोचना आदि हैं उसी प्रकार तामिल के ग्रंथों पर भी हैं।

प्राचीन तमिल वाङ्मय को समृद्ध करने में जैन आचार्यों का बहुत बड़ा हाथ है। उन्होंने सन् ईस्वी से पहले ही यहाँ की भूमि के साथ आत्मसात् होकर तमिल साहित्य की भी श्रीवृद्धि करना प्रारंभ कर दिया था। उन्होंने श्रमण संस्कृति के प्रचार के साथ तमिल साहित्य को श्रेष्ठ महाकाव्य, कोश और व्याकरण आदि ग्रंथ दिये। ईस्वी सन् के पहले प्रथम संघ काल में तमिल साहित्य की जो रचना हुई वह काल कवलित हो गई उसके बाद जो साहित्य बचा है उसमें तमिल के श्रेष्ठ कवि, वैयाकरणकार तथा कोश-निर्माता जैन आचार्य ही हैं। जैन आचार्यों द्वारा ईसी की सातवीं-आठवीं शती तक तमिल साहित्य की बहुत सेवा की गई। उसके बाद तमिलनाडु में निरंतर अविरत युद्ध चलता रहा। उस युद्ध की ज्वाला में तमिल साहित्य का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत कुछ भाग नष्ट हो गया। जैन साहित्य की ही इससे सर्वाधिक हानि हुई। उसके बाद बौद्ध साहित्य का नंबर आता है।

तमिल साहित्य के संगम काल का कुरल नामक एक उत्कृष्ट काव्य है जो दक्षिण भारत में तमिल वेद के नाम से प्रसिद्ध है। उसके रचयिता तिरुवल्लुवर नामक एक संत थे। पहले प्रत्येक धर्मवाले इसे अपना धर्मग्रन्थ सिद्ध करने में गौरव मानते थे। परंतु अब अनेक साहित्यिक प्रमाण इस बात के मिले हैं कि इस ग्रंथ के रचयिता जैन संत ही हैं। नीलकेशी की टीका में इसे स्पष्ट रूप से जैन शास्त्र कहा गया है। शिलप्पधिकारम् और मणिमेखलै इन दो ग्रंथों में भी जो दूसरी शती में लिखे गये थे, इसका जैन ग्रंथ रूप से उल्लेख है; बल्कि इन तीनों ग्रंथों के रचयिताओं ने अपनी प्रमाण पुष्टि के लिए कुरल के यत्र तत्र साठ से अधिक पद्य उद्धृत किये हैं। शिलप्पधिकारम् और मणिमेखलै में कुरल की ५५ कविताएँ उद्धृत की गयी हैं। जीवक चिंतामणि में भी कुरल का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त कई जैन आचार्यों ने इस पर अपनी टीकाएँ लिखी हैं।

कुरल नामक इस अलौकिक ग्रंथ का रचयिता तिरुवल्लुवर मद्रास के समीप मैलापूर का निवासी था। वहाँ पहले भगवान मेयिनाथ का एक बहुत बड़ा मंदिर था। उसे गिराकर बहुत-सी शताब्दियों पहले कपालेश्वर का मंदिर बना दिया गया है। तिरुवल्लुवर का बाल्य-काल कैसे बीता इस संबंध में कोई प्रमाण नहीं मिलता। पर उसने शादी अवश्य की थी। उसकी स्त्री साध्वी तथा पतिपरायणा थी। इसलिए उसका वैवाहिक जीवन अत्यंत सुखमय था। पति का शब्द उसके लिए ईश्वर की आज्ञा के समान था। एक बार जब किसी साधु ने तिरुवल्लुवर के इस सुखी गृहस्थ जीवन के बारे में सुना तब वह उसके पास आकर पूछने लगा-'यदि आप गृहस्थाश्रम को अच्छा कह दें तो मैं वैवाहिक बंधन में बंधने के लिए तैयार हूँ।' भला तिरुवल्लुवर इसका हाँ या ना में कैसे उत्तर देता? वह तो उसे अपने जीवन की अनुभूतियाँ ही बता सकता था। इसलिए उसने उस साधु को अपने जीवन के अनुभव बताने के लिए कुछ दिनों तक अपने यहाँ रोक लिया। वह वैरागी भी वहाँ रह गया। एक दिन तिरुवल्लुवर ने अपनी पत्नी को मुट्ठीभर नाखून और लोहे के टुकड़ों का भात पकाने के लिए कहा। उनकी पत्नी वासुकी ने किसी प्रकार की शंका-कुशंका के बिना उन चीजों को चूल्हे पर चढ़ा दिया और उसने उन्हें पकाने का प्रयास किया। किसी अन्य दिन वह साधु और तिरुवल्लुवर साथ-साथ खाने बैठे थे। वासुकी पास ही कुएँ से पानी खींच रही थी। परसा हुआ भात ठंडा था, फिर भी 'अरी ओ! देखो तो, भात कितना गर्म है। छूते ही मेरा हाथ जल गया।' इस प्रकार तिरुवल्लुवर चिल्लाया। बेचारी साध्वी पत्नी तिरुवल्लुवर की इस चिल्लाहट को सुन आधे में लटकती हुई गागर वैसी ही छोड़ दौड़ती हुई आकर थाली पर पंखा झलने लगी। एक दिन मध्याह्नकाल में तिरुवल्लुवर अपने करघे पर कपड़ा बुन रहा था। एकाएक उसने अपनी पत्नी से कहा—'देखो तो बहुत अंधेरा हो गया है, अभी जल्दी दीया जलाकर ला, मुझे इन धागों को जोड़ना है।' कोई दूसरी होती तो भर दुपहरी में पति की इस आज्ञा को सुन उसकी बुद्धि के संबंध में कुछ विचार करती। संभवतः उसे पागल मान बैठती। परंतु वासुकी के मन में इस प्रकार की धुंधली कल्पना तक नहीं आई। वह जल्दी ही दीपक जलाकर लाई। इन सब बातों को देख साधु समझ गया कि जब तक पति-पत्नी में पूर्ण एकता रहती है, लेश-मात्र भी संदेह नहीं रहता तभी तक विवाहित जीवन सुख का सागर है। इन सब घटनाओं को देख वह साधु बोला—"मैं आपके सुखी विवाहित जीवन का मर्म समझ गया हूँ।' इतना कह वह वहाँ से चला गया।

परंतु गार्हस्थ्य-जीवन के इस सुख का अनुभव वह अपने जीवन के अंतिम काल तक नहीं कर सका। बीच ही में उसकी पत्नी का देहांत हो गया। उसकी मृत्यु से उसे अत्यंत दुःख हुआ। वह अपनी पत्नी के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संबंध में कहता है : 'ओ स्नेहमयी, तुम मेरे लिए सुस्वादु भोजन बनाती थी। मेरी आज्ञा का तुमने सद पालन किया। तुम मेरे पाँवों को रोज दबाती और मेरे सोने के बाद सोती थी, मेरे उठने के बाद उठती थी। तुम्हारे पास कपट नहीं था। तुम्हारा स्वभाव सुंदर और सरल था। परंतु आज तुम मुझे छोड़कर जा रही हो। अब क्या कभी मेरी इन आँखों को आराम से नींद आयेगी?' पत्नी के देहांत के बाद तिरुवल्लुवर ने वैराग्य धारणकर दीक्षा ले ली और अंत समय तक संसार को उपदेश देते हुए स्वर्गवासी हुए।

कुरल की रचना कर तिरुवल्लुवर ने संसार को अपनी ओर से एक अमूल्य भेंट दी। इसका अनुवाद संसार की प्रायः सब भाषाओं में हो चुका है। इस बात का मैं पहले ही उल्लेख कर चुका हूँ कि जैन संत की इस रचना को तमिलभाषाभाषी तमिल वेद कहते हैं। कुरल के कुल तीन भाग हैं। पहले में धर्म, दूसरे में अर्थ और तीसरे में काम। इस प्रकार चतुर्विध पुरुषार्थों में से प्रथम तीन का ही इस ग्रंथ में काव्यपूर्ण वर्णन किया गया है।

कुरल के इन तीन भागों में कुल १३३ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में १० पद्य हैं। कुल १३३० पद्य हैं। प्रत्येक कविता में दो चरण हैं। ये छोटे छोटे पद्य गंभीर तथा विशाल अर्थों से परिपूर्ण हैं। इस काव्य में एक प्रकार की असीमता, उदारता और सहृदयता है। अंतिम के प्रेम-संबंधी प्रकरणों में अश्लीलता का नामोनिशान नहीं। संसार के श्रेष्ठ ग्रंथों में अश्लीलता की छाया से रहित शुद्ध प्रेम-तत्त्व का वर्णन करनेवाला केवल अकेला यही ग्रंथ है।

इस ग्रंथ में प्रथम भाग को आरंभ करने के पूर्व मंगलाचरण के रूप में चार परिच्छेदों में ईश्वर की स्तुति की गयी है। स्तुति करते समय ग्रंथकार ने जैन परंपरा में अनेकांत दृष्टि का अवलंबन लेकर सब धर्मों का समन्वय करनेवाले सिद्धसेन दिवाकर, हरिभद्रसूरि, हेमचंद्राचार्य और आनंदघन की परिपाटी अपनाई है। उसे पढ़ने पर वह कुछ स्थलों पर परमात्मा को लागू होता है और कुछ स्थलों पर ऋषभदेव, सिद्ध, बुद्ध, महावीर आदि तीर्थंकर और विश्व के अन्य पथ-प्रदर्शकों को लागू होता है। इसलिए बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव आदि सब तिरुवल्लुवर को अपने अपने संप्रदाय का मानते हैं। ईसाई लोग भी कहते हैं कि कुरल पर बाईबल के विचारों की छाया है। लेकिन मंगलाचरण को पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि तिरुवल्लुवर जैन ही थे। उदाहरण के लिए मैं यहाँ मंगलाचरण के प्रथम अध्याय को अविकल उद्धृत करता हूँ।

अकर मुदल एषुत्तेल्लाम् आदि
भगवन् मुदट्रे उलकु

अकार सभी अक्षरों का मूल है। इसी तरह जगत का मूल वही आदि भगवान् है।

कट्रदनालाय पयनॅन्क़ोळ वालरिन्
नट्राळ् तॉळा अर ऍनिन् ॥

शास्त्रज्ञ अथवा बहुश्रुत होने से क्या (फल) हुआ, (अगर) चिन्मय या केवलज्ञानसंपन्न (भगवान) की पद-वंदना न की।

मलर्मिश एहिनान् माणडि शेन्दार्
निलमिशै नीडुवाळ् वार् ॥

जो भक्तों के हृदयकमल में निवास करनेवाले के महनीय चरणों के पूजक हैं। वे परमधाम में अमर रहेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेण्डुदल् वेण्डामै इलान् अडि शेर्न्दार्क्कु
याण्डुम् इडुम्बै इल ॥

रागद्वेषरहित (ईश्वर) के चरणों में शरण पानेवाले भक्तों को त्रिदोष (मानसिक, वाचिक और कायिक) नहीं लगते।

इरुळ् शेरिरुविनैयुम् शेरा इरैवन्
प्रॉरुळ् शेर् पुकळ् पुरिन्दार् माट्टु ॥

शुभ फल और अशुभ फल दोनों मिथ्यात्व और अज्ञानरूपी अंधकार के मूल हैं। जो सर्वरक्षक के सत्य प्रकाश या सत्यकीर्ति के अभिलाषी हैं उनके पास दोनों कर्मफल नहीं फटकते।

पॉरि वायिळ् ऐन्दवित्तान् पॉय् तीरॉळुक्क
नॅरि निरार् नीडु वाळ्वार् ॥

पंचेन्द्रियनिग्रही तथा असत्यरहित के नियमों पर चलनेवाले अमर बनते हैं।

तनक्कुवमै इल्लादान् ताळ् शेर्न्दारक्कल्लाल
मनक्कवलै माट्रलरिदु ॥

निरुपम (ईश्वर) के चरण सेवकों को छोड़ इतर जनों द्वारा मानसिक चिंता दूर होना कठिन है।

अरवाळि अन्दणन् ताळ् शेरन्दार्कल्लाल्
पिरवाळि नीन्दलरिदु ॥

धर्मसमुद्र अथवा धर्मस्वरूप और दयानिधि के चरणसेवकों को छोड़ अन्य लोग इतर (अर्थकामरूपी) समुद्रों को तैरकर पार न पहुँच सकते हैं।

कोळिल् पोरियिर् गुणमिलवे एण् गुणत्तान्
ताळै वणङ्गात्तलै ॥

जिस तरह गुणरहित इन्द्रिय निष्फल है, उसी तरह अष्टगुणवाले (अनंतज्ञान अनंतदर्शन आदि अष्टगुणयुक्त सिद्ध भगवान) की वंदना न करनेवाला सिर भी निष्फल है।

पिरविप् पेरुङ्कडल् नोन्दुवर् नीन्दार्
इरैवनडि शेरादार् ॥

सर्वरक्षक (ईश्वर) के चरणसेवी यह भवमहासागर तिर जाते हैं; दुसरे नहीं।

पाठक देखेंगे कि ऊपर के मंगलाचरण में आदि भगवान्, केवलज्ञानसंपन्न, मिथ्यात्व, पंचेन्द्रियनिग्रही, रागद्वेषरहित और अष्टगुणयुक्त आदि शब्द जैन परंपरा से ही संबंध रखते हैं। निर्ग्रन्थ संप्रदाय में ऋषभदेव आदिदेव या आदि भगवान् के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रायः सब जैनाचार्यों ने ऋषभदेव की आदि भगवान के रूप से ही स्तुति की है। ज्ञानावरणीय कर्म के विलय होने पर जो संपूर्ण ज्ञान होता है उसे केवलज्ञान कहते हैं ईश्वर के लिए इस शब्द का प्रयोग केवल जैन परंपरा में ही है। कर्म के कारणों में मिथ्यात्व का सबसे प्रमुख स्थान है। मिथ्यात्व का नाश होने पर ही प्राणी गुणविकास द्वारा गुणस्थान के सोपानों पर आरोहण करता है। मुमुक्षु के लिए जैनपरंपरा में पंचेन्द्रियों पर दमन करने के लिए जगह-जगह भारपूर्वक कहा गया है। इसी प्रकार ईश्वर के लिए जैन परंपरा में वीतराग या रागद्वेषरहित इन दोनों विशेषणों का प्रयोग होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। सिद्धों के आठ गुण प्रसिद्ध हैं। जैन परंपरा में आठ कर्म माने गये हैं। चार घाती और चार अघाती। उनमें चार घाती कर्म ही विशेष हैं। उनके विलय से अष्ट गुणों की प्राप्ति होती है। वे हैं—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय। इनमें केवल ज्ञानावरण के क्षय से केवलज्ञान, केवल दर्शनावरण के क्षय से केवलदर्शन, पंचविध अंतराय के क्षय से दान, लाभ भोग, उपभोग, वीर्य आदि पाँच लब्धियाँ और मोहनीय कर्म के क्षय से सम्यक्त्व तथा चारित्र का आविर्भाव होता है। प्रति दिन पंच नमस्कार के समय सिद्धों की स्तुति करते हुए इन आठ गुणों का उच्चारण किया जाता है—अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व, निराबाध, अटल, अवगाहन, अमूर्त और अगुरुलघु। कुछ लोग आठ गुणों का अर्थ योगियों की अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा आदि सिद्धियाँ करते हैं। पर अणिमा आदि गुण नहीं, वे योग से प्राप्त सिद्धियाँ हैं। योगभ्रष्ट होने पर ये सिद्धियाँ लुप्त हो सकती हैं। ऐसी परिस्थिति में ईश्वर को भी विनश्वर मानना पड़ेगा। इसलिए ईश्वर के आठ गुण जैनपरंपरा में सिद्धों के बताये हुए आठ गुणों से अतिरिक्त नहीं हो सकते। तिरुवल्लुवर के बाद प्रायः सब जैन संतों ने इसी प्रकार की व्यापक भावना अपनाकर स्तुति की है।

जैन परंपरा में चार आश्रमों में से जिस प्रकार सिर्फ सागार और अनगार धर्म की ही चर्चा है, उसी प्रकार तिरुवल्लुवर ने धर्म प्रकरण में गृहस्थ धर्म और यति धर्म का ही वर्णन किया है। धर्म शीर्षक प्रथम खंड में सागार धर्म अर्थात् गृहस्थ जीवनात्मक उत्तम पत्नी, उत्तम पिता, उत्तम प्रतिवासी तथा उत्तम मनुष्य बनने के लिए जितने गुण आवश्यक हैं उनकी शिक्षा १९ अध्यायों में दी गयी है और अंत के २४ वें परिच्छेद में बताया गया है कि यश की आकांक्षा से मनुष्य कैसे अच्छे काम में प्रवृत्त हो सकते हैं। सागार धर्म के बाद अनगार धर्म अर्थात् तपस्वियों के गुणों का विवेचन १३ अध्यायों में किया गया है। इस खंड के अंतिम अड़तीसवें परिच्छेद में भाग्य का विवेचन है।

'कुरल' के पहले अंश धर्म की विशेषता यह है कि उसमें मनुष्य जीवन के संबंध में आशापूर्ण भाव व्यक्त किया गया है। मनुष्य जीवन की महत्ता बतलाते हुए कवि ने लिखा है—'मनुष्य जीवन का सर्वश्रेष्ठ वर है सुसम्मानित पवित्र गृह और उसके महत्त्व की पराकाष्ठा है सुयशस्वी संतति।' कवि का वात्सल्य भाव कैसा मधुर है! वह कहता है—'मनुष्य की सच्ची संपत्ति उसकी संतान है। पिता का पुत्र के प्रति सच्चा कर्तव्य यही है कि वह उसे विद्वानों की परिषद् में सर्व प्रथम सम्मान के योग्य बनावे। पुत्र की रहन-सहन कैसी होनी चाहिए इसके लिए सब उसके पिता से प्रश्न करें कि किस पुण्य से आपको ऐसा पुत्र प्राप्त हुआ है। बालकों के स्पर्श से परमानंद के सुख की प्राप्ति होती है और उनकी बोली से कानों की तृप्ति। जिसने बालक की तुतलाती बोली नहीं सुनी, क्या वह कह सकता है कि बाँसुरी मधुर तथा सितार सुरीली है।' इसके आगे वह लिखता है—'सर्व भूतों के प्रति दया और अतिथि-सत्कार ये दोनों मनुष्य के प्रधान कर्तव्य हैं और मधुर संभाषण है उसका आभूषण। कृतज्ञता, न्याय-निष्ठता, आत्म-संयम, क्षमा, दान तथा परोपकार उसके अमूल्य गुण हैं। किंतु परदाररति, ईर्ष्या, लोभ, वृथा भाषण, अनिष्ट चिंता इत्यादि उसके अति भयानक दूषण हैं।'

प्राणी मात्र जिसे मृत्यु कहते हैं वह तो केवल जीव के शरीर का विनाश है। शरीर के नाश से जीवात्मा का अवसान नहीं होता। अर्तमानिक जीवन के बाद उसका भविष्यत् जीवन भी अनुस्यूत रहता है।

अपनी संतति को योग्य बनाने तक गृहस्थ अपने साधु आचरण के फलस्वरूप गुणस्थान के अनेक सोपान अतिक्रमण कर डालता है। कुछ ऊँचे स्थान पर पहुँचने के कारण वह अब अपने सामने साधु जीवन के उच्चतर क्षेत्र को फैला हुआ देखता है और उस क्षेत्र के उपयुक्त बनने के लिए वह स्वयं अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप पर कठोर नियंत्रण रखता है। उसके लिए वह अब सर्व प्राणियों के प्रति दया, निरामिष भोजन, आत्म-निग्रह, ध्यान तथा योग का अभ्यास और इस प्रणाली द्वारा आध्यात्मिक बल तथा दृष्टि शक्ति प्राप्त कर दंभ, असत्य, क्रोध, हिंसा, परपीड़न इत्यादि से पराङ्मुख होकर अपने मन को विशुद्ध बनाता है। इस प्रकार के नियंत्रण से मिथ्यात्व के अनेक स्तर अपने आप नष्ट हो जाते हैं और साधु की अन्तर्ज्योति विकसित हो जाती है। वह अपने अंतर में अनुभव करता है कि यह परिदृश्यमान जगत स्वप्नवत् है—आज है, कल अन्तर्हित हो जायगा। इस कारण से सांसारिक वस्तुओं के प्रति उसकी जो आसक्ति होती है वह दूर हो जाती है और उसके मनश्चक्षु के सामने सत्य की यथार्थ मूर्ति प्रकाशित होती है। किंतु फिर भी सूक्ष्म वासना (लोभ) उसका पिंड नहीं छोड़ती। वह नाना रंगों में, नाना आकृतियों में प्राणियों को धोखा देती रहती है। बड़े बड़े धार्मिक भी उसके पंजे से छुटकारा नहीं पाते। और जब तक उसका संपूर्ण विलय नहीं होता तब तक आत्मा पूर्ण आनंद की अधिकारिणी नहीं हो सकती। इसी लिए इस अंक का उपसंहार करते कवि ने लिखा है—'वासना कभी तृप्त नहीं होती, किंतु यदि कोई व्यक्ति वासना का त्याग करने के लिए समर्थ हो जाय तो वह तत्काल ही संपूर्णता प्राप्त कर लेता है।'

इस प्रकरण के अंत में कवि ने कर्म का जो वर्णन किया है वह जैन परंपरा का खास विचार है—आत्मा में कर्म के कारण कुछ संचित या अव्यक्त शक्तियाँ रहती हैं, जो उपयुक्त उत्तेजन प्राप्त कर व्यक्त हो जाती हैं। ये संचित प्रवृत्तियाँ जीव को भले-बुरे काम करने की ओर प्रवृत्त करती हैं। जन्म-जन्मान्तरों में जितने भले-बुरे काम किये, भली-बुरी चिंताओं को मन में स्थान दिया, और इस जन्म में वह जितने कामों तथा जितनी चिंताओं से युक्त होता है, उनकी एक समष्टि बनकर कुछ अव्यक्त रूप में रहती है, और कुछ व्यक्त रूप में परिणत होती हुई उदीयमान होती रहती है। इस जीवन के अंत में जितना कर्मफल अव्यक्त रहता है, उसी को वह भविष्यत् जीवन में अपने साथ ले जाता है, और यही उसके उस जीवन का प्रारब्ध या प्राक्तन कर्मफल अथवा भाग्य कहलाता है। इस परिच्छेद का सार यही है कि कर्म ही प्रधान है और कर्म के हाथ से बचना असंभव है। सतहत्तरवें अध्याय में कर्म का विलय करने के लिए तप के प्रभाव का वर्णन किया गया है। कृच्छ्रसाधन अर्थात् बाह्य और आन्तरिक तप से कर्म-बंधन शिथिल हो जाते हैं और मनुष्य अपने आपको मुक्त कर सकता है। अंत के तिरसठवें परिच्छेद में कहा गया है कि मनुष्य दृढ़ संकल्प के द्वारा मंद भाग्य पर विजय प्राप्त कर सकता है।

प्रथम अध्याय के बाद द्वितीय अध्याय में दूसरे पुरुषार्थ अर्थ का वर्णन है। इस खंड में राजा और उसकी योग्यता, मंत्री की नियुक्ति, सेना, जासूस, मित्र की पहचान, मित्र का महत्त्व, अत्याचार का परिणाम, शत्रु से सावधान इन परिच्छेदों के बाद कृषि, भिक्षावृत्ति, दान, यश आदि विषयों का वर्णन छोटे छोटे प्रकरणों में किया गया है। प्रजा का रंजन करनेवाला, चतुर और दयावान् राजा, उद्यमी और खेती में प्रवीण लोग, धीरज, वीरता, साहस आदि गुण इस सब का वर्णन इस खंड में है।

कुरल के तृतीय काम खंड में किसी विशिष्ट प्रणयी युगल की प्रेम-गाथा है। इसमें नायक-नायिका के प्रथम साक्षात्कार से लेकर अंतिम मिलन तक का वर्णन बड़े निपुण ढंग से किया गया है। इस खंड का प्रारंभ बड़े विचित्र ढंग से किया गया है। पहले एक रम्य उद्यान में नायक के सामने नायिका पड़ जाती है। दोनों की चार आँखें होते ही परस्पर एक दूसरे के प्रति प्रेम का संचार होता है। युवती का सौंदर्य, युवक विशाल नेत्र, आँखों की चिलमन, उन्नत उरुस्थल, युवक को पागल बना देते हैं। इसके बाद एक दो बार युवती उस युवक के सामने और आई, पर प्रत्येक बार उसने अपने भावों को छिपाकर उसके प्रति अपनी अरुचि बताई, इस पर नायक कहता है—'वह मुझे जानने नहीं देती कि उसने मुझे देखा है किंतु अब अपांग दृष्टि से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देखकर न देखने का बहाना करती है तब मुझे ऐसा जान पड़ता है कि वस्तुतः उसके हृदय में मुझे देखकर आनंद लहरे मारता है। वह ऊपर ऊपर से विरक्ति का प्रदर्शन करती है, किंतु हृदय में गहन प्रेम का पोषण करती है।' बाद में अपने प्रेमी के अनुनयपूर्ण मुँह को देखकर वह भी द्रवीभूत हो उठती है और अंत में वह अपनी आँखों द्वारा विवाह की सम्मति भी दे देती है। फिर उन दोनों का गोपनीय विवाह हो जाता है।

गोपनीय विवाह हो जाने पर भी यह घटना दोनों के माता-पिता से गुप्त रखी गयी। दोनों किसी ऐसे प्रसंग की प्रतीक्षा में रहे जिससे कि बिना किसी कठिनाई के दोनों के माता-पिता परस्पर मिलने की अनुमती दे दें, परंतु बहुत समय तक वह शुभ प्रसंग नहीं आया। अंत में यह प्रेमी उस समय तमिल देश में प्रचलित एक बर्बर उपाय की शरण लेता है। वह डंबल सहित कुछ ताल के पत्ते काटकर एक गट्ठर बनाता और उस पर घोड़े पर सवार होने की तरह बैठता है। उसी अवस्था में उसके कुछ मित्र प्रेम-संगीत गाते हुए उसे गाँव के भीतर ढोकर ले जाते हैं। एक ओर बेचारा युवक नुकीले ताड़पत्रों पर छटपटाता रहता है, दूसरी ओर गाँव के अनेक बालक और युवक उस प्रेमी युवक को चारों ओर से घेरकर अनेक प्रकार के वाक्बाणों से उसके हृदय को छिदते रहते हैं। बीच बीच में उसकी प्रणयिनी का भी नाम लिया जाता है। अंत में अपकीर्ति के डर से प्रेमिका के माता-पिता उस प्रेमी के साथ अपनी लड़की का विवाह कर देते हैं।

कुछ समय तक नवीन दंपति को परस्पर के मधुमय साहचर्य में रहने का सौभाग्य प्राप्त होता है। थोड़े ही समय तक वे आनंदोपभोग करते हैं कि इतने ही में निरानंद की काली घटा उनके प्रेम के नभोमंडल को घेर लेती है। राजा की ओर से युवक के पास शीघ्र ही युद्ध में सम्मिलित होने के लिए बुलाहट आती है। इस अरुचिकर घटना से थोड़ी देर के लिए दोनों विचलित हो उठते हैं। युद्ध में जाने की आज्ञा मांगने पर युवती कहती है—मुझे छोड़ कर जाने पर मेरी मृत्यु निश्चित है, यदि अलग होने की बात के अतिरिक्त कुछ कहना हो तो कहो। इसके सिवाय यदि जल्दी लौटने की बात कहना चाहते हो तो वह भी उसे ही कहो जो तब तक जीवित रहने की आशा रखती हो।' युवती द्वारा इतना अनुनय-विनय किया जाने पर भी युवक विदाई की प्रार्थना करके चल देता है। इसके बाद तरुणी की दारुण विरह-यातना का वर्णन ग्यारह परिच्छेदों में किया गया है। वियोगावस्था में वह अपने उद्‌गार इस प्रकार प्रकट करती है—'मैं आज तक जीती हूँ, केवल उनके प्रत्यागमन की आशा से। शीघ्र उनके आने की चिंता से मेरा हृदय अधीर हो उठता है। मैं अहर्निश यही कामना करती हूँ उनकी रूप-सुधा-पान कर मेरे उपोषित नेत्र तृप्त हो जायँ। मेरे शीर्ण बाहु की विवर्णता दूर हो जाय। अग्नि में घृत के समान जिसका चित्त प्रेम के उत्ताप से पिघल गया है, क्या वह प्रियतम के साथ विवाद कर सकती है?'

उधर युद्ध-स्थल में नायक भी घर लौटने के लिए छटपटाता है। वह तत्काल उड़कर घर पहुँचना चाहता है। अपने वियोग में पत्नी की दशा की कल्पना कर वह कातर और भयभीत हो उठता है। वह मन ही मन कहता है—'मेरे पहुँचने के पहले ही यदि उसका कुसुम पल्लव हृदय टूट गया तो घर पहुँचने से क्या लाभ?'

युद्ध से लौटकर जब उसका हृदय-देवता घर पहुँचता है, तब प्रेमिका दौड़कर उसके सामने नहीं आती। वह मान करके बैठ जाती है। पाँच परिच्छेदों में कवि ने पाठकों को मान के लीला-माधुर्य का आस्वादन कराया है। इन परिच्छेदों को पढ़ने पर एक एकांकी को पढ़ने का आनंद प्राप्त होता है। रसपरिपाक के लिए एक तृतीय व्यक्ति की सृष्टि की गयी है—वह है नायिका की सखी। जिसे संबोधन कर नायक तथा नायिका अपने अपने मनोभाव व्यक्त करते हैं और सखी आवश्यकतानुसार बीच बीच में कुछ कह कर दोनों में सुलह कराती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस खंड में एक पतिपरायणा साध्वी रमणी के शुद्ध आचरण तथा पवित्र हृदयोद्गारों का सजीव चित्र है। इसमें कहीं पर असंयम, प्रगल्भता, उच्छृंखलता तथा अपवित्रता की गंध तक नहीं। यह प्रकरण पिछले साहित्यिक ग्रंथों में वर्णित अवैध परकीया प्रेम से कोसों दूर है। दोनों प्रेमी-युगल का वर्णन होने पर भी इसमें अश्लीलता की छाया तक नहीं दिखायी देती। प्रायः देखा जाता है कि अनेक बार उपदेश व्यर्थ होते हैं। उपदेशों की इन व्यर्थता को देख कवि ने दो प्रेमी युगल के वर्णन द्वारा शुद्ध प्रेम-राज्य का वास्तविक स्वरूप उद्घाटित किया है और प्रेम-विधि के यथोचित निर्वाह के लिए एक पथ-प्रदर्शक आदर्श युवक युवतियों के सामने रखा है।

पहले धर्म-खंड में सब जीवों के प्रति प्रेम करना, जीवदया, अहिंसा, मांसभक्षणत्याग आदि विषयों का सुंदर वर्णन है। प्रेम का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—'प्रेम का द्वार बंद करनेवाली रुकावट कहाँ है ? एक दूसरे पर प्रेम करनेवालों की आँखों में छलकनेवाले आँसू उनके हृदय में लहरानेवाले प्रेम सागर के अस्तित्व को प्रकट करते हैं। प्रेम की मधुरता चखने के लिए ही यह जीव अपने आपको बार-बार इस हाड़-मांस के पिंजड़े में बंद कर लेता है।' दूसरों के हृदय को पीड़ा न पहुँचाने का उपदेश करता हुआ कवि कहता है—'तुम्हारे एक शब्द से यदि किसी दूसरे व्यक्ति को दुख पहुँचा तो तुम्हारी अच्छाई जलकर खाक हो जायगी। अग्नि से जला हुआ जख्म भर जाता है, परंतु जिह्वा से जली हुई जगह कभी ठीक नहीं होती। जब दो मीठे बोल बोलकर आसानी से काम होने की संभावना होती है तब फिर मनुष्य क्यों कठोर वाणी का उपयोग करता है?' मित्रता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—'जिस प्रकार कमर से बंधा हुआ वस्त्र हवा से उड़ने लगते ही हमारा हाथ उसे संभालने के लिए तुरंत आगे बढ़ता है, उसी प्रकार मित्र की लज्जा छिपाने के लिए सच्चा मित्र उस पर पर्दा डालता है।' दुश्मन को केवल ऊपरी व्यवहार से नहीं पहचाना जा सकता, यह बताते हुए कवि कहता है—'तीर सीधा दीखता है परंतु हत्या करता है। वीणा टेढ़ी रहती है परंतु मधुर संगीत सुनाती है।' इसी प्रकार एक यह उद्धरण पढ़िये—'फूलों की ताजगी से मालूम होता है कि उन्हें कितना पानी दिया गया होगा। उसी भाँति मनुष्य के वैभव से अंदाज लगाया जा सकता है कि उसने कितना परिश्रम किया होगा।'

इस प्रकार तिरुवल्लुवर उदार विचार, परिस्थित्यनुकूल दृष्टांत और रसपूर्ण वर्णन करने में प्रसिद्ध है। तिरुवल्लुवर के डेढ़ सौ वर्ष बाद एक जैन कवि ने कुरल के संबंध में लिखा है 'कुरल ग्रंथ के दोहों की सीमा में असीम अर्थ भरा हुआ है। मानों राई को खोदकर उसमें सप्त सिंधु की विशालता को आबद्ध किया गया है।' तमिल साहित्य की महान् संत कवयित्री अव्वयार उसके बारे में कहती है—'जिस प्रकार घास के पत्ते पर रहनेवाले ओसकण में गगन को छूनेवाले ताड़वृक्ष का प्रतिबिंब होता है, उसी भाँति कुरल के इन छोटे पद्यों में महान् अर्थ भरा हुआ है।' ऐसे थोड़े से उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं। जिस आँख में मधुरता नहीं, वह गड्ढा है। बड़े आदमियों की लक्ष्मी गाँव के बीच चौराहे पर फलों से झुके हुए वृक्ष की तरह होती है। केवल हंसी का नाम मित्रता नहीं, हृदय को हँसानेवाली सच्ची प्रीति ही मित्रता है। जो दुख से दुःखी नहीं होता वह दुःख को दुःखी करता है। जो किसान बार-बार अपने खेतों पर नहीं जाता उसके खेत अकेली जीवन बितानेवाली पत्नी की तरह उससे नाराज हो जाते हैं। सिर्फ किसान ही अपने परिश्रम की रोटी खाता है। बाकी सारी दुनिया दूसरों के उपकारों से दबी है। दानों से परिपूर्ण भुट्टों की छाया में आराम करनेवाले हरे-भरे खेत जिस राज्य में हैं उसके आगे दूसरे राज्य के सिर झुक जायँगे। मेरा पेट खाली है यह शब्द सुनकर धरती माता हँसती है।

कुरल के धर्म, अर्थ और काम खंडों का ऊपर जो दिग्दर्शन किया गया है वह उसकी केवल एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

झांकी है। एक छोटे से लेख में इस ग्रंथ रत्न का संपूर्ण विवरण देना शक्य नहीं। इस ग्रंथरत्न में मयलापुर के एक प्रतिभासंपन्न अस्पृश्य जुलाहे ने मनुष्य के नैतिक, पारिवारिक या नागरिक जीवन का जो वर्णन किया वह विश्व-साहित्य में अद्वितीय है। ग्रंथ में प्रत्येक देश के मानव-मन की सभ्यताओं का संदेश है। संक्षेप में सादी रहन-सहन और उच्च विचारशक्ति इस ग्रंथ का ध्येय है। इस काव्य के छोटे छोटे पद्य तमिल प्रांत के छोटे-बड़े हर एक की जबान पर चढ़े हुए हैं। एक ओर इस ग्रंथ में श्रमण या संत संस्कृति के संतों के उपदेशों की भाँति जीवनोपयोगी उपदेश है, दूसरी ओर वह भीष्म, चाणक्य और वात्स्यायन इत्यादि नीति विशारदों के साथ एक आसन पर बैठने योग्य है, तीसरी ओर अश्वघोष, कालिदास और सिद्धसेन दिवाकर जैसे वागीश्वरों की योग्यता का भावपूर्ण कल्पना सामर्थ्य इस काव्य में है। इस ग्रंथ को पढ़कर मन में यह भावना दृढ़ीभूत हो जाती है कि साधुता, पौरुष, संयम, कष्टपूर्ण जीवन और आत्म-गौरव से बढ़ कर इस दुनिया में और कोई गुण नहीं, इनके विकास के लिए दुष्टता तथा पाप का परित्याग करना चाहिए। अब तो तिरुवल्लुवर का यह ग्रंथ केवल तमिलनाडु का ही नहीं, बल्कि सारे विश्व का है। कुरल की रचना कर तिरुवल्लुवर ने विश्व साहित्य को एक अमूल्य संपत्ति दी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org